Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

हरिशंकर परसाई की राजनीतिक चेतना

डॉ. बद्री दत्त मिश्र

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, फीरोज़ गांधी कालेज, रायबरेली, उत्तर प्रदेश।

सारांश- हरिशंकर परसाई भारतीय जनता और उनकी जीवन स्थितियों को हमारे सामने ला ते हैं। उन्होंने जनसाधारण की असाधारण शक्ति में पूर्ण आस्था रखी और जब वे देखते हैं कि जनता अपनी सक्रिय भूमिका से कटकर उदासीन, तटस्थ , सहनशील भीड़ के रूप में रूपांतरित हो रही है , तो वे बरस पड़ते हैं । वे जानते हैं कि यह अधिकार जनता का है । वे जानते हैं कि जनता जब तक इसके लिए प्रयास नहीं करेगी , जब तक अपने अधिकारों के लिए लड़ेगी नहीं, तब तक अधिकार उसे प्राप्त नहीं हो सकेंगे । वास्तव में, किसी भी लोकतंत्र को सही तरीके से चलाने में जनता की ही भूमिका होती है । अगर जनता उस कार्य में खुद को निबध्द करती है तभी लोकतंत्र को सही तरीके से चलाया जा सकता है , इसलिए परसाई जहां एक और भारतीय सामाजिक व्यवस्था ,राजनीतिक स्थितियों पर नजर रखते हैं, वहीं भारतीय जनता के लिए भी वे बेहद सजग नजर आते हैं । अपने व्यंग्य के द्वारा वह यही करते हैं कि भारतीय जनता इस पूरी प्रक्रिया को समझ सके और उसी के अनुरूप अपने अधिकारों के लिए लड़ाई कर सके ।

मुख्य शब्द- हरिशंकर परसाई, भारतीय, जनता, राजनीति, निबंधकार, स्वतंत्रता, स्वाधीनता, आंदोलन।

हरिशंकर परसाई हमारे समय को बताने वाले लेकिन , हमारे समय के लोगों के लिए बहुत असुविधाजनक निबंधकार है । जब मधुर मधु रचनाओं , नयनाभिराम सीरियलों और प्रश्नशुन्यता की अकथनीय मासूमियत का ज़माना हो , तो अपने समय के दर्द को बयां करने वाली परसाई की रचनाएं, मुंह में कंकड़ की तरह लगती हैं । हरिशंकर परसाई को समकालीन संदर्भों के साथ पढ़ना ,एक बृहत्तर और जटिल परिवेश को समझना तो है ही , इसके साथ समकालीन और सामयिक में अंतर करते हुए भविष्य की संभावनाओं को भी टटोलना है। स्वतंत्रता के बाद, शायद राजनीति ही वह क्षेत्र है जो सबसे ज्यादा विघटित और कलुषित हुआ । सिद्धांत और व्यवहार में अंतर पड़ने के कारण राजनीति दो मुखी हुई । सेवा, समर्पण ,सादगी ,अहिंसा, नैतिक आचरण जैसे स्वाधीनता आंदोलन के मूल्य व्यर्थ हो रहे थे और चालाकियां तथा फरेब उसका स्थानापन्न बन रहे थे। स्वातंत्र्योत्तर भारत में व्याप्त विसंगतियों का उद्घाटन और उन पर विचार अनेक समाज शास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने किया , लेकिन उन्होंने यह कार्य अनुशासन के विशेषज्ञ के रूप में आंकड़ों के आधार पर तटस्थ रहते हुए किया । जबकि परसाई ने यही कार्य ठोस जीते जाते, आंखों देखी जीवन के अंत: संबंध जटिलताओं को समेटे हुए पात्रों के माध्यम से किया । इससे स्वाधीन भारत की तस्वीर बहुत हद तक सामने आती है । उनके निबंधों में इसीलिए स्वाधीन भारत ज्यादा वास्तविक तरीके से मूर्त हुआ है । परसाई द्वारा देखे गए इस राजनीतिक वातावरण व राजनेताओं को जब हम समझने की कोशिश करते हैं, तो यूं लगता है एक बड़ा कॉमेंटेटर अपने आसपास के परिवेश को , जो लगभग पूरे देश में एक समान तरीके से ही घटित हो रहा है , को सीधी और सच्चे तरीके से व्यक्त कर रहा हो । परसाई ने देख लिया था कि राजनीति का कोना–कोना भ्रष्ट और पतित होकर अब गंध मचाने लगा है । ऐसे

बिगड़े हुए सियासी लंबरदारों की लूट खसोट पर व्यंग करते हुए परसाई इन पर निशाना साधते हैं "इंडिया इस ए ब्यूटीफुल कंट्री और छूरी कांटे से इंडिया को खाने लगी । जब आधा खा चुके तब देसी खाने वालों ने कहा अगर इंडिया इतना खूबसूरत है तो बाकी हमें खा लेने दो। अंग्रेजों ने कहा अच्छा हमें दस्त लगने लगे हैं ,हम तो जाते हैं तुम खाते रहना । वे देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद के साथ खाते थे यह जनतंत्र के अचार के साथ खाते हैं ।" जनतंत्र का विकास लूट तंत्र का विकास बन गया और विडंबनाओं ने अपने पैर पसार लिए । वर्तमान राजनीति की बात करें तो यह काजल की ऐसी कोठरी बन गया जिसमें घुसते ही बुद्धि विद्या चरित्र और आस्था को कालिख लग ही जाती है । हमारे भारतीय लोकतंत्र और राजनीति की विचित्र विडंबना रही है की आरंभ से ही वह अंतर विरोधियों का शिकार रही और परसाई इन अंतर्विरोधों के घटाटोप में घुसकर उन कारणों की पड़ताल करते हैं, जिनके कारण लोकतंत्र भीड़ तंत्र और भेड़ तंत्र में तब्दील होता हुआ दिखाने लगा है ।अब राजनीति देश सेवा का मिशन नहीं रही , बल्कि अपने और अपनों की सेवा का प्रोफेशन बन गई । परसाई लोकतंत्र की इस विद्रूपता को अपने शब्दों में बयान करते हैं "भारतीय लोकतंत्र का हाल यह है कि हर पार्टी के लोग बिकाऊ हैं जिसे जरूरत हो खरीद ले । "राजनीति को इस तरह विकृत करने के पीछे जो सबसे बड़ा कारण है, वह है सत्ता की लोलुपता , कुर्सी वाद। यही , भारतीय राजनीति की एक ऐसी विकट विसंगति बन गया है , जहां से निकलना बहुत मुश्किल दिखाई पड़ता है । लोकतंत्र की अवधारणा अपने आप में बुरी नहीं है क्योंकि यही एक ऐसा तंत्र है जहां हम सबको अपनी बात कहने की स्वतंत्रता है नीतियों की आलोचना करने का अधिकार है । भिन्न-भिन्न मतों ,प्रवृत्तियों, मूल्यों का अस्तित्व तथा संघर्ष यहीं पर संभव है । यदि लोकतंत्र में इसका अभाव होगा तो हम लोकतंत्र के निर्माण और उसकी बहाली में अपना योगदान नहीं दे रहे होंगे, लेकिन जो समाज आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकता असहमति या विरोध का अस्तित्व बर्दाश्त नहीं कर सकता वह देर सबेर एकाधिकार वादी सत्ता का गुलाम बन जाता है । राजनीति के संदर्भों को ज्यादा बेहतर तरीके से समझाने के क्रम में ही हरिशंकर परसाई ने तीन सयाने नामक कहानी लिखी यह प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें एक स्त्री जिसका नाम कला और दो पुरुष जिनका नाम धर्म और विज्ञान थे यह तीनों ही एक गांव में रहते हैं । राज महल में रहने वाली राजनीति ने अपने वैभव के मध्य में तीनों को बंदी बना लिया किंतु कला और विज्ञान को अधिक समय तक कैद में नहीं रखा जा सका आखिरकार जनमानस जागृत हुआ और मानवता का जयघोष करता हुआ राज महल के सामने एकत्र हो गया तीनों सयानो ने जनमानस को राजनीति के छल प्रपंच का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि खून से धोया हुआ स्वर्ण कदापि ग्रहण नहीं है जिसने तुम्हें बर्बर बना दिया है और जिसने गांव के निवासियों का शहर करा दिया है उसने तुम्हें असहाय पशु की तरह बांध रखा है स्वर लूटने वालों वाली भीड़ को राजमहल की ओर मोड़ो और सबसे पहले आज शक्ति प्राप्त करो तब तुम मुक्त हो जाओगी । अपनी प्रतीकात्मक कहानी में परसाई या दिखाते हैं कि जनमानस की आंख उसके समक्ष राजनीति सदैव घुटने टेक ती रही है । राजनीति में जनशक्ति केप्रबल प्रवाह को देखा तो उसके पांव कांपे ।पर उसने अंतिम कुटिल प्रयास किया । उसने लोभ दिखाया ,क्षमा याचना की ,झूठी प्रतिज्ञा की ,रोई गिड़गिड़ाई पर अंत में अपने ही प्रसाद में वह बंदीनी हुई ।

परसाई जनमानस के उस आक्रोश पर सवाल उठाते हुए नजर आते हैं कि सिर्फ नारे लगाकर या शोर मचाकर व्यवस्था में बदलाव नहीं लाया जा सकता है वह स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि "हम प्रतीकों से लड़ते हैं, छाया पर हमला करते हैं । अर्जुन ने मछली की परछाई पानी में देखकर ही उसे बाण से छेद दिया था , पर आज के हमारे धनुर्धर तो मछली को छोड़कर उसकी परछाई को ही बाण मारते हैं" ।[5]

स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक भारत में समाजवाद लाने की घोषणा ए बार-बार होती रही हैं, किंतु वह आज तक आ नहीं पाई । आजादी के पूर्व की स्थिति आज भी बनी हुई है । आजादी मिले 75 वर्ष से ऊपर हो चुके हैं, परंतु हम चेतना के धरातल पर ज्यों के त्यों बने हुए हैं । सामाजिक विषमता और सामाजिक शोषण जैसी तमाम विकृतियां आज भी विद्यमान हैं । समाज का एक वर्ग ऐसा है जिसके कुत्तों को भी दूध और वस्त्र उपलब्ध है , तो दूसरा वर्ग ऐसा भी है, जिसे हाड़ तोड़ मेहनत करने के बावजूद सुख और चैन से 2 जून की रोटी भी नसीब नहीं होती है। जहां एक के पास जीवन यापन की अद्यतन सुविधाएं मौजूद हैं , वहीं दूसरे के पास ना तो पेट भर खाने के लिए रोटी है , ना तन ढकने के लिए कपड़ा ।इस सामाजिक विषमता को परसाई जी ने पैसे का खेल नामक रचना में निरूपित किया है । भीतर लक्ष्मी पूजा हो रही थी,"लक्ष्मी की जय और मेरे पास ही खड़ा हुआ एक

लड़का ठंड से सीसी करता हुआ पुकार रहा था एक आने में माचिस एक आने में और वह मजदूर परिवार उस कार को और कभी उस भीड़ को देख रहा था बच्चा बेचारा भूखा था सामने मिठाई देखी तो रो पड़ा अम्मा भूख लगी है मिठाई लेने उधर बच्चा कुर्ते से आंसू पूछता जाता था और धूल में सने हुए लय्या के टुकड़े खाता जाता था । भीतर स्वादिष्ट प्रसाद बांटा जा रहा था । अतृप्त बालक बोला, मां और मां ने कहा बेटा पैसे नहीं है ,चलो घर चलें ।"[6]

परसाई इस सामाजिक विषय के मूल में शोषण को सर्वाधिक जिम्मेदार मानते हैं । वे इन शोषक शक्तियों के खिलाफ लिखते हैं कि "यह लड़के अनाथ है ही नहीं । वास्तव में अनाथ तो उस अनाथालय के अध्यक्ष और मंत्री और कमेटी के मेंबर हैं । यह लड़के तो उनके पालन करता हैं। यह बैंड बजा कर पैसे मांगते हैं , और उस पैसे से उन लोगों का पेट भरते हैं , जो अनाथालय के प्रबंधकों के माई बाप हैं ।असल अनाथ तो वह हैं जो अनाथालय चलाते हैं ।"[7]

परसाई वर्ग विषमता को रुपायित करने के लिए महंगाई को संदर्भित करते हुए यह सवाल उठाते हैं कि जहां एक तरफ महंगाई की मार गरीबी के सुथन्ने को तार-तार करने पर आमादा है वहीं दूसरी तरफ यही महंगाई उच्च वर्ग की समृद्धि का सूचक बनती दिखाई पड़ती है इस वर्ग विषमता की कहानी परसाई की जुबानी +जैसे-जैसे महंगाई बढ़ती है वैसे-वैसे उत्सव बढ़ते हैं । पिछले साल शहर में 250 दुर्गा की प्रतिमाएं रखी गई थी, इस साल और महंगाई बढ़ी तो 300 प्रतिमाएं हो गई। पिछले साल भी दिवाली पर धूम धड़ाका था , पर इस साल महंगाई बढ़ी तो और बड़ा हो गया ।महंगाई का इतना रोना रोते हैं मगर उधर देखो कीमती साड़ियों की दुकानों पर, आभूषणों की दुकानों ,महंगे कपड़ों की दुकानों पर ,कॉस्मेटिक्स की दुकानों पर भीड़ लगी है। कहां है गरीबी। किनके लिए बढ़ी है । ये कौन हैं , जिनके महंगाई उनकी समृद्धि का कारण है ।[8]

परसाई जी भारतीय राजनीति के आख्यान कार थे । भारतीय राजनीति की हर करवट पर उन्होंने सटीक और बेबाक टिप्पणी की है , पर आपातकाल पर वे मौन दिखाई पड़ते हैं । परसाई जैसे मुखर टिप्पणी कार की ये चुप्पी क्यों है। ऐसी चुप्पी पर उनके लेखन की प्रतिबद्धता पर भी सवाल उठना स्वाभाविक है । इस संदर्भ में परसाई ने 1980 में प्रकाशित विकलांग श्रद्धा का दौर में अपनी कैफियत पर लगभग सफाई देने वाले अंदाज में बहुत कुछ लिखा है । वो लिखते है आपातकाल के दौरान बुद्धजीवियों की भूमिका जटिल थी। आपातकाल शासन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया बिलकुल भिन्न थी । सामान्य रूप से ना तो उन्होंने आपातकाल के विरुद्ध अपना मुंह खोला और ना ही अपने पद से त्यागपत्र दिए अध्यापकों ने पढ़ाना पत्रकारों ने दैनिक और साप्ताहिक प्रकाशित करना कवियों ने अपनी रचनाएं छापना कलाकारों ने अभिनय करना नौकरशाहों ने आदेशों का पालन करना जजों ने निर्णय देना और वकीलों ने अपनी वकालत करना जारी रखा। [9]

वैसे परसाई का यही मानना था कि वह जानबूझकर चुप थे। आपातकाल पर उन्होंने यह बात स्वीकारा भी है ।आपातकाल और सेंसर के कारण, मैं भी दूसरे लेखकों की तरह चुपचाप था। वे अन्यत्र भी इस बात को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि हां हमने इमरजेंसी का समर्थन और जेपी आंदोलन का विरोध किया था।[10]

अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता पर स्वयं भी सवाल उठाते हैं *संपादकों ने कभी कहा था, इमरजेंसी है तो डरो। मै डरा ,फिर कहा इमरजेंसी की तारीफ में लिखो, मैंने लिखा। ईमान से लिखा। इमरजेंसी उठी तो कहा इमरजेंसी के खिलाफ लिखो । मैने इमरजेंसी के खिलाफ भी लिखा । एक बड़े व्यंग कार द्वारा आपातकाल जैसी भीषण और विकट राजनीतिक त्रासदी का समर्थन करना अपने आप में एक ईमानदार रचनाकार के अंतर्विरोध को दर्शाता है । यह महज संयोग नहीं, बल्कि एक सोची सोची समझी लेखकीय उहापोह है , जो उनके लेखन में बार-बार दिखाई पड़ती है , और ई मानदारी से जिसे वह स्वीकार भी करते हैं । लेकिन इन सारी बातों से परसाई की प्रतिबद्धता में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है । भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिली , किंतु आर्थिक स्वतंत्रता कुछ लोगों के हाथों तक सीमित रह गई और यही बात उन्हें बार-बार विवश करती है , कि वह भारतीय जनता के लिए भारतीय समाज के लिए और उनसे तमाम जुड़े हुए मुद्दों के लिए लिखें। समाज में पैदा हुई विषम आर्थिक परिस्थितियों के संबंध में परसाई की कहानी भोलाराम का जीव इस पक्ष को बहुत बेबाकी से प्रस्तुत करती है । वास्तव में नारद एवं भोलाराम की पत्नी के बीच संवाद भारतीय परिवारों की विषम आर्थिक परिस्थितियों को बयान करने में पर्याप्त है। समाज की आर्थिक व्यवस्था इतनी

जर्जर और जटिल हो गई है कि सामान्य जनजीवन अस्त व्यस्त हो चला है। इस असमानता का संबंध भीड़ के दर्शन से है । समाज की इस आर्थिक असमानता पर आघात करते हुए परसाई लिखते हैं *देश एक कतार में बदल गया है। चलती फिरती कतार है, कभी चावल की दुकान पर खड़ी होती है, फिर सरक कर शक्कर की दुकान पर चली जाती है। आधी जिंदगी कतार में खड़े खड़े बीत रही है। शस्य श्यामला भूमि के वासी भारत भाग्य विधाता से प्रार्थना करते हैं कि इस साल अमेरिका में गेहूं पैदा हो और जापान में चावल। 11 परसाई रचनावली तीन पगडंडियों का ज़माना और इन सब के लिए वह भारत की राजनीति और उसके द्वारा उत्पन्न व्यवस्था को ही दोषी मानते हैं। इसी कारण परसाई ने सरकारी योजनाओं में खोखले पन के साथ इसमें लगे नेताओं अफसरों एवं कर्मचारियों के भ्रष्टाचार बेईमानी एवं घोटालों पर भयावह व्यंग्यकरते हुए , ग्रामीण परिवेश से लेकर शहरी परिवेश तक फैले धरातलीय नग्न यथार्थ का सटीक व्यंग्यात्मक चित्रण परसाई करते हैं।इस परिवेश में व्याप्त विडंबना के मूल कारण के रूप में वे एक ऐसे अन आधुनिक , जनविरोधी सरकारी तंत्र को मानते हैं, जिसने सिर्फ अपने लाभ के लिए इस तंत्र का इस्तेमाल किया है। अपनी रचना बकरी पौधा चर गई में इसका खाका खींचते हुए वे लिखते हैं यह है राष्ट्रीय विकास का पौधा। इसके आसपास तमाम योजनाओं के चबूतरे बनाए गए जैसे ब्लॉक डेवलपमेंट ,सहकारी आंदोलन, विभिन्न प्रोजेक्ट । मगर साधो, ज्यों ही पौधा बढ़ा, भ्रष्टाचार की बकरी आई, उसने चौकीदार से कहा, तुम मुझे पौधा चर लेने दो। आखिर उसका दूध ही बनेगा तो मुझे दूह लेना आर्थिक असमानता भुखमरी शोषण अन्याय सामाजिक पाखंड ग्रामीण और शहरी परिवेश की विडंबना है इसी कारण होती है परसाई का दृढ़ मत है कि आजादी के बाद से अब तक हमारे कामों ने इनके निर्मूलन हेतु कोई स्पष्ट नीति नीति ईमानदारी से नहीं बनाई ऐसे में बढ़ती हुई आ समानता भैया वह स्तर तक बढ़ती चली गई और लोगों में समानता का यह स्तर भारतीय समाज के विश्व में कर्ण के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार होते गए।

वस्तुत:, हरिशंकर परसाई भारतीय जनता और उनकी जीवन स्थितियों को हमारे सामने ला ते हैं। उन्होंने जनसाधारण की असाधारण शक्ति में पूर्ण आस्था रखी और जब वे देखते हैं कि जनता अपनी सक्रिय भूमिका से कटकर उदासीन, तटस्थ , सहनशील भीड़ के रूप में रूपांतरित हो रही है , तो वे बरस पड़ते हैं । वे जानते हैं कि यह अधिकार जनता का है । वे जानते हैं कि जनता जब तक इसके लिए प्रयास नहीं करेगी, जब तक अपने अधिकारों के लिए लड़ेगी नहीं, तब तक अधिकार उसे प्राप्त नहीं हो सकेंगे। वास्तव में, किसी भी लोकतंत्र को सही तरीके से चलाने में जनता की ही भूमिका होती है। अगर जनता उस कार्य में खुद को निबध्द करती है तभी लोकतंत्र को सही तरीके से चलाया जा सकता है, इसलिए परसाई जहां एक और भारतीय सामाजिक व्यवस्था , राजनीतिक स्थितियों पर नजर रखते हैं, वहीं भारतीय जनता के लिए भी वे बेहद सजग नजर आते हैं। अपने व्यंग्य के द्वारा वह यही करते हैं कि भारतीय जनता इस पूरी प्रक्रिया को समझ सके और उसी के अनुरूप अपने अधिकारों के लिए लड़ाई कर सके ।

टिप्पणियाँ :

1. हरिशंकर परसाई रचनावली
2. वही पृष्ट 264
3. रचनावली /परछा यी भेदन पृष्ठ 64/
4. प्रश्नावली पैसे का खेल पृष्ठ 196
5. परसाई ग्रंथावली भाग 2 सामाजिक की डायरी पृष्ठ 292
6. रचनावली 4, हस्ती मिटती नहीं हमारी , 148 149
7. वसुधा अंक 43 पृष्ठ 383 लिखना है.
8. परसाई रचनावली 3 सहानुभूति के रंग पृष्ठ244